ओ३म्
यज्ञोपवीत
का
महत्त्व
परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ओ३म्

यज्ञोपवीत का महत्त्व

लेखक

परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क, दिल्ली–६
दूरभाष : २ ३९७७२१६
E-mail : ajayarya@vsnl.com
Website : www.vedicbooks.com

संस्करण : २००५

मूल्य : ५.०० रुपये

शब्द संयोजक : भगवती लेज़र प्रिंट्स
नई दिल्ली–६५; दूर. : ६४१४३५९

मुद्रक : स्पीडो ग्राफिक्स,
पटपड़गंज, दिल्ली–३१

दो शब्द

यज्ञोपवीत भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। यह यज्ञ की वेश-भूषा है। यह विद्या का चिह्न है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगिराज श्रीकृष्ण, महाराज शिव, ब्रह्माजी, वाचक्नवी गार्गी, भगवती सीता, सती-साध्वी द्रौपदी—सभी नर-नारी यज्ञोपवीत धारण करते थे।

एक युग था जब लोगों ने अपने सिर दे दिये, परन्तु यज्ञोपवीत नहीं उतारे। आज गुरुओं, आचार्यों द्वारा यज्ञोपवीत धारण करके इसे मन्दिर के द्वार तक पहुँचते-पहुँचते उतार देते हैं अथवा घर जाकर खूँटी पर टाँक देते हैं। यह यज्ञोपवीत उतरता क्यों है, इसलिए कि हममें श्रद्धा नहीं होती। श्रद्धा होने पर इसके लिए बड़े-से-बड़ा मूल्य चुकाया जा सकता है।

इस यज्ञोपवीत के महत्त्व और मूल्य को समझो। आज से लगभग ३५० वर्ष पूर्व महाराज शिवाजी ने अपना यज्ञोपवीत-संस्कार करने के लिए सात करोड़ रुपये खर्च कर दिये थे।

यज्ञोपवीत धारण करके इसे उतारें नहीं, घर

जाकर खूँटी पर न टाँकें। **सोपवीती सदा भाव्यम्**—सदा यज्ञोपवीतधारी रहना चाहिए। महर्षि दयानन्द के इस कथन को सदा ध्यान में रक्खें—

"विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़ मुसलमान ईसाइयों के सदृश बन बैठना, यह भी व्यर्थ है। जब पतलून आदि वस्त्र पहिरते हो और तमग़ों आदि की इच्छा करते हो, तो क्या यज्ञोपवीत आदि का कुछ बड़ा भार हो गया था?"

—सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लासः

यज्ञोपवीत क्यों धारण करें। यह क्या सन्देश और उपदेश दे रहा है, इस सम्बन्ध में अगले पृष्ठों में कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी दी है। पढ़ें और लाभ उठाएँ।

वेद-मन्दिर विदुषामनुचरः
लेखरामनगर [इब्राहीमपुर] **—जगदीश्वरानन्द**
दिल्ली-११० ०३६
दूरभाष : ७२०२२४९

यज्ञोपवीत का महत्त्व

वैदिक धर्म में संस्कारों का बहुत महत्त्व है। वैदिक धर्म के अनुसार मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति के लिए सोलह संस्कारों का करना अत्यन्त आवश्यक है। सभी संस्कार महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु इन सबमें उपनयन-संस्कार एक विशिष्ट स्थान रखता है। यही वह संस्कार है, जिससे बालक की शिक्षा और दीक्षा का प्रारम्भ होता एवं उसे द्विजत्व की प्राप्ति होती है। इसी समय से उसे वैदिक कर्मकाण्ड और यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त होता है, जैसाकि वेद में भी आदेश है—

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः।
तमाहुतं नशीमहि॥ —ऋ० १०।५७।२

अर्थात् सामान्य जनों की यह कामना है कि जो यज्ञ का साधनरूप उत्तम तन्तु=उपवीत का धागा, विद्वानों में प्रचलित है, उस विधि-विहित सूत्र को

हम प्राप्त करें।

महर्षि दयानन्द ने पूना-प्रवचनों में कहा था—

बालक मूर्ख और छोटा होने के कारण माता-पिता के अधीन रहता है। आठ वर्ष की अवस्था तक उसमें धर्म-सम्बन्धी काम करने की योग्यता नहीं होती, इसलिए हमारे धर्मशास्त्रों ने व्रत-बन्ध (यज्ञोपवीत) होने से पहले बालकों के लिए नित्यकर्म का विधान नहीं किया है।

—उपदेश मञ्जरी, १४वाँ प्रवचन

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत धारण न करना अपने-आपको विद्या तथा यज्ञ के अधिकार से वञ्चित रखना है और यज्ञोपवीत के बिना बालक द्विज भी नहीं बन सकता, अतः उन्नतिशील नर-नारियों को यज्ञोपवीत-संस्कार पर विशेष ध्यान देना चाहिए। वैदिक धर्म के अनुसार यज्ञोपवीत एक अत्यन्त वैज्ञानिक और महत्त्वपूर्ण संस्कार है। आचार्य अथवा गुरु यज्ञोपवीत देते समय और यज्ञोपवीती यज्ञोपवीत बदलते समय जिस मन्त्र का उच्चारण करता है उसी से यज्ञोपवीत की महिमा स्पष्ट है—

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं
प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि॥

—पारकस्करगृह्यसूत्र २।२।११

परमपवित्र, आयुवर्धक, अग्रणीयता का द्योतक, श्वेतवर्ण का यह यज्ञोपवीत, जिसे प्रजापति परमात्मा ने प्रत्येक बालक को सहज-स्वभाव से, गर्भ से, जरायु (गर्भ की झिल्ली) के रूप में प्रदान किया है, उसको तू धारण कर, पहन। यह यज्ञोपवीत तुझे बल और तेजदायक हो। तू यज्ञोपवीत है, मैं तुझे यज्ञ की यज्ञोपवीतता के साथ पहनता हूँ।

इस मन्त्र में यज्ञोपवीत को बल और तेज प्रदान करनेवाला कहा गया है। यज्ञोपवीत के तीन तारों में बल और तेज दृष्टिगोचर नहीं होता, परन्तु जो इन तारों के रहस्य को हृदयङ्गम कर लेता है, उसमें बल और तेज का सञ्चार हो जाता है। इसके रहस्य को समझकर ही लाखों सिक्खों, राजपूतों और मरहठों

ने अपने सिरों की आहुति दे दी, परन्तु यज्ञोपवीत का त्याग नहीं किया।

'यज्ञोपवीत' वैज्ञानिक और वैधानिक संस्कार है

जिस प्रकार भारतीय शासन के तिरंगे झण्डे का एक विधान है, उसमें तीन रङ्गों का एक विशिष्ट विज्ञान है, इसके मध्य में स्थित चक्र का एक अभिप्राय है, इसी प्रकार यज्ञोपवीत का भी रहस्य है। यज्ञोपवीत में तीन दण्ड, नौ तन्तु और पाँच गाँठें होती हैं।

तीन ही तार क्यों ?

यज्ञोपवीत में तीन धागे अथवा तार होते हैं। तीन ही तार क्यों ? इसका भी वैज्ञानिक रहस्य है। हमारे यहाँ तीन ही संख्या का बड़ा महत्त्व है। सत्त्व, रज और तम—गुण तीन; पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु—लोक तीन; गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिण—अग्नि तीन; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—यज्ञोपवीत के अधिकारी भी तीन; अतः यज्ञोपवीत में तीन धागों का होना सुसंगत है।

यज्ञोपवीत ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ—

तीन आश्रमों में रहते हुए ही धारण किया जाता है। चतुर्थाश्रम संन्यास में पहुँचने पर इसे उतार दिया जाता है, क्योंकि यह तीन आश्रमों में धारण किया जाता है, इस अभिप्राय से भी इसमें तीन धागे हैं।

ये तीन दण्ड मन, वचन और कर्म की एकता सिखाते हैं। जो मन में है वही वचन में होना चाहिए और उसी प्रकार कर्म करना चाहिए। जब मन, वचन और कर्म में एकता होती है, तब मनुष्य महात्मा बन जाता है, अन्यथा वह दुरात्मा हो जाता है।

तीन दण्डों का एक और भी अभिप्राय है। वह यह कि कायदण्ड, वाग्दण्ड और मनोदण्ड अर्थात् शरीर, वाणी और मन को संयम में रखना। कायसंयम के द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन, गुरुओं का आदर और सत्कार, अहिंसा और तपादि; वाणीसंयम के द्वारा सत्य, हितकर और मधुर बोलना तथा स्वाध्याय करना; और मन-संयम के द्वारा मन के विकारों को दूर करके उसे शुद्ध, पवित्र और शिवसंकल्पोंवाला बनाना तथा ईश्वर-चिन्तन करना। यज्ञोपवीतधारी के लिए शरीर, वाणी और मन का यह संयम अत्यावश्यक

है।

तीन तारों में एक अन्य रहस्य भी छुपा हुआ है। यह संसार त्रिगुणात्मक है—सत्त्व, रज और तम की तीन लड़ियों में समस्त प्राणी बँधे हुए हैं। यज्ञोपवीत के तीन धागे यह स्मरण कराते हैं कि हमें इस संसार से निकलना है। संन्यासी संसार के मोह, माया और ममता से निकल जाता है, इसलिए संन्यासाश्रम में यज्ञोपवीत उतार दिया जाता है।

साथ ही सत्त्व, रज, तम [प्रोटोन, इलैक्ट्रोन, न्यूट्रोन]—ये तीन गुण यह संकेत करते हैं कि इन गुणों से ऊपर उठकर त्रिगुणातीत होना है।

माता, पिता, आचार्य—ये तीन गुरु हैं। इन तीनों की सेवा, आदर-सम्मान करना चाहिए।

प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन और सायंसवन—तीन सवन होते हैं। तीनों समय के कार्यों को यथासमय करो।

यज्ञोपवीत और गायत्री का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसमें परमपिता के सर्वश्रेष्ठ नाम ओम् के अक्षर भी तीन ही हैं [अ, उ और म्]।

महाव्याहृतियाँ भी तीन ही हैं—भूः, भुवः और स्वः। गायत्री मन्त्र में पाद भी तीन ही हैं—तत्सवितुर्वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्।

शरीर में वात, पित्त और कफ—धातुएँ भी तीन ही हैं। इन्हें सम रखना है। इनका सम होना स्वास्थ्य है और इनमें विषमता होना रोगी होना है।

स्थूल, सूक्ष्म और कारण—शरीर भी तीन ही हैं। इनका विवेक कर आत्मा को जानना है।

दु:ख भी तीन हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक—इन तीनों से निवृत्त होना है। इनसे निवृत्ति का नाम ही परमपुरुषार्थ अथवा मोक्ष है।

ज्ञान, कर्म और उपासना भी तीन हैं—इनके रहस्य को समझकर और तदनुसार आचरण करके परमात्मा को प्राप्त करना है।

ये तीन तार एक और संकेत भी दे रहे हैं, वह यह कि संसार में तीन प्रकार के ऐश्वर्य हैं—सत्य, यश और श्री। यज्ञोपवीतधारी को इन तीनों में से कोई एक चुनना होता है। ब्राह्मण के लिए सत्य

मुख्य है, अन्य दो बातें गौण हैं। ब्राह्मण बनना है तो चोटी का सत्यवादी ब्राह्मण बनना, ऐसा-वैसा नहीं। क्षत्रिय बनना है तो यशस्वी और यशस्वी भी चोटी का, युद्ध में पीठ न दिखानेवाला, परन्तु साथ ही जीवन में सत्य और श्री भी हो। वैश्य बनना है तो साधारण पैसेवाला नहीं अपितु चोटी का बनना। कुबेर और भामाशाह भारत के ही थे। धन कमाना, परन्तु सचाई के साथ और यशवालों की रक्षा भी करना।

यज्ञोपवीत के तीन तार परमात्मा, आत्मा और प्रकृति—इन तीन अनादि सत्ताओं का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने का भी संकेत देते हैं। यज्ञोपवीतधारी, परमात्मा क्या है? उसका स्वरूप क्या है? उसकी प्राप्ति कैसे होती है? इत्यादि बातों को जानने का प्रयत्न करता है। इसी प्रकार मैं कौन हूँ? मैं कहाँ से आया हूँ? मुझे कहाँ जाना है? मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है, आदि आत्मज्ञान-सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाना है। प्रकृति क्या है? इससे किस प्रकार उपयोग लेकर मानव-जीवन को सुखी बनाया जा सकता है—आदि प्रकृति के विविध ज्ञान प्राप्त करने

का प्रयत्न यज्ञोपवीतधारी करता है। जो यज्ञोपवीतधारी, 'मुझे परमात्मा, आत्मा और प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना है'—इस रहस्य को हृदयङ्गम करके यज्ञोपवीत धारण करता है, उसका यज्ञोपवीत धारण करना सार्थक है।

तीन तार एक और रहस्य के भी सूचक हैं। प्रत्येक मनुष्य पर तीन प्रकार के ऋण चढ़े होते हैं—पितृऋण, ऋषिऋण तथा देवऋण। प्रत्येक यज्ञोपवीत-धारी को इन ऋणों से अनृण होने का प्रयत्न करना चाहिए।

माता-पिता जन्म देकर तथा लालन-पालन करके हमें बड़ा करते हैं। उनकी सेवा-शुश्रूषा करके यह ऋण कुछ सीमा तक चुकाया जा सकता है, इसलिए उपनिषद् के ऋषि ने '**मातृदेवो भव**' और '**पितृदेवो भव**' का उपदेश दिया है।

ब्रह्मा से लेकर महर्षि दयानन्दपर्यन्त सच्चे त्यागी, तपस्वी और वीतराग विद्वान् जिन्होंने वैदिक संस्कृति और सभ्यता को हम तक पहुँचाया है तथा समय-समय पर हमारा मार्गप्रदर्शन करते रहे हैं, हमारा

कर्त्तव्य है कि उनके द्वारा दी हुई विद्या को पढ़कर, वेदों के स्वाध्याय, उपदेशों और लेखों द्वारा इस ज्ञानगङ्गा को आगे प्रवाहमान रक्खें, इस ज्ञान और विज्ञान को दूसरों तक पहुँचाएँ। यह ऋषि-ऋण से अनृण होने की विधि है।

वायु, अग्नि, जल आदि देव हैं, यज्ञ द्वारा इनको शुद्ध करना देवऋण से अनृण होना है। **अग्निर्वै मुखं देवानाम्।** अग्नि सारे देवों का साझा मुख है। अग्नि को खिलाने से सारे देवताओं की तृप्ति हो जाती है।

इसका एक और अभिप्राय भी है—इन्द्रियों को भी देव कहते हैं, अतः समस्त इन्द्रियों का सदुपयोग जानकर उन्हें दृढ़ बनाना और उनका ठीक प्रयोग करना भी देवऋण चुकाना है। देव का अर्थ है परमात्मा। प्रतिदिन परमात्मा की उपासना करना।

यज्ञोपवीत के तीन धागे ब्रह्मग्रन्थि द्वारा आपस में जुड़े रहते हैं। यह इस बात का बोधक है कि मनुष्य ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों को साथ-साथ प्राप्त करे।

इस प्रकार तीन-तीन के अनेक जोड़े हैं। इन

सभी का समावेश यज्ञोपवीत के तीन तारों में हो जाता है। इसलिए यज्ञ के तीन तारों में सारे विश्व का विज्ञान भरा हुआ है।

'यज्ञोपवीत' में नौ ही तन्तु क्यों ?

इसके नौ तन्तुओं में नौ देवताओं की कल्पना की गई है, यथा—

ओंकारः प्रथमे तन्तौ द्वितीयेऽग्निस्तथैव च।
तृतीये नागदैवत्यं चतुर्थे सोमदेवता॥
पञ्चमे पितृदैवत्यं षष्ठे चैव प्रजापतिः।
सप्तमे मरुतश्चैव अष्टमे सूर्य एव च॥
सर्वे देवास्तु नवमे इत्येतास्तन्तुदेवताः॥

—सामवेदीय छान्दोग्यसूत्र परिशिष्ट

पहले तन्तु में ओंकार, दूसरे में अग्नि, तीसरे में अनन्त, चौथे में चन्द्रमा, पाँचवें में पितृगण, छठे में प्रजापति, सातवें में वायुदेव, आठवें में सूर्य और नवें तन्तु में सर्वदेवता प्रतिष्ठित हैं।

यज्ञोपवीत धारण करनेवाला बालक यज्ञोपवीत के तन्तुओं में स्थित नौ देवताओं के निम्न गुणों को

अपने अन्दर धारण करता है—

१) ओंकार—एकतत्त्व का प्रकाश, ब्रह्मज्ञान।

२) अग्नि—तेज, प्रकाश, पापदहन।

३) अनन्त—अपार धैर्य और स्थिरता।

४) चन्द्रमा—मधुरता, शीतलता, सर्वप्रियता।

५) पितृगण—आशीर्वाद, दान और स्नेहशीलता।

६) प्रजापति—प्रजापालन, स्नेह, सौहार्द।

७) वायु—पवित्रता, बलशालिता, धारणशक्ति, गतिशीलता।

८) सूर्य—गुणग्रहण, नियमितता, प्रकाश, अन्धकारनाश, मल-शोषण।

९) सर्वदेवता—दिव्य और सात्त्विक जीवन।

जो यज्ञोपवीत के इन गुणों को स्मरण कर, इनसे प्रेरणा प्राप्त करेगा, उसका जीवन उच्च, महान् यशस्वी और तेजयुक्त क्यों न होगा ?

नौ तन्तुओं का एक और भी रहस्य है। अथर्ववेद के अनुसार यह शरीर "**अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या**" (१०।२।३१) आठ चक्र और नौ

द्वारोंवाला एक नगर है। यह नगर है मानव-देह। यज्ञोपवीत के नौ तन्तु हमें एक सन्देश देते हैं कि प्रत्येक द्वार पर एक-एक प्रहरी नियत करना है, जिससे हम कोई बुरा कर्म न कर सकें, इन नौ द्वारों से कोई बुराई हमारे अन्दर प्रविष्ट न हो सके। ये नौ द्वार हैं—दो आँख, दो कान, दो नासिका के छिद्र, एक मुख,ये सात हुए। इनके लिए वेद में कहा है—

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे [यजुः० ३४।५५]

हमारे शरीर में सात ऋषि बैठे हुए हैं। इन्हें ऋषि बनाना है। ये ऋषि बन गये तो जीवन का कल्याण हो जाएगा। यदि ये राक्षस बन गये तो जीवन का विनाश हो जाएगा। दो मल-मूत्र त्यागने के छिद्र हैं। इस प्रकार कुल नौ द्वार हैं। यज्ञोपवीत के नौ तार यह सन्देश देते हैं कि हमें प्रत्येक द्वार पर एक-एक चौकीदार बैठाना चाहिए।

हम आँखों से अच्छे दृश्य देखें, प्रभु की रचना के सौन्दर्य को निहारें, गन्दे दृश्य और स्वास्थ्य को नष्ट करनेवाले सिनेमादि न देखें। हमारी दृष्टि ऐसी हो—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति॥

दूसरे की स्त्रियों को माता के समान, दूसरों के धन को मिट्टी के समान, और सब प्राणियों को अपने समान देखें, क्योंकि ऐसा देखनेवाला ही वास्तव में देखता है।

कानों से हम परमात्मा का गुणगान सुनें, प्रभु का कीर्तन सुनें, गाली-गलौच और गन्दे गाने न सुनें। यज्ञोपवीतधारी का जीवन वेदमय होना चाहिए और वेद के अनुसार—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम। —यजुः० २५।२१

कानों से हम उत्तम बातें सुनें।

इसी प्रकार नाक से उत्तम, दिव्यगन्ध ही सूँघें, ओम् का जप करें [जप नाक से ही होता है] विषयवासनाओं की गन्ध ही न लेते रहें। जिह्वा से स्वास्थ्य-वर्धक, उत्तम और सात्त्विक पदार्थों का सेवन करें एवं मधुर वाणी बोलें। उपस्थ और गुदा का भी संयम रक्खें। सच्चे ब्रह्मचारी बनें। यह है यज्ञोपवीत के नौ तन्तुओं का विज्ञान।

पाँच गाँठों का रहस्य

यज्ञोपवीत में पाँच गाँठें होती हैं। पाँच गाँठें पञ्चमहायज्ञों को करने की ओर संकेत कर रही हैं। पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण चुकाने के लिए इन यज्ञों का करना अनिवार्य है।

गृहस्थों को प्रतिदिन पाँच यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिए। पाँच यज्ञ ये हैं—

१. ब्रह्मयज्ञ—सन्ध्या और स्वाध्याय।

२. देवयज्ञ=अग्निहोत्र और विद्वानों का मान-सम्मान।

३. पितृयज्ञ-जीवित माता-पिता, दादा-दादी, परदादा-परदादी—इनका श्राद्ध और तर्पण करना, इनकी सेवा-शुश्रूषा करके इन्हें सदा प्रसन्न रखना और इनका आशीर्वाद प्राप्त करना।

४. बलिवैश्वदेवयज्ञ—घर में जो भोजन बने उसमें से खट्टे और नमकीन पदार्थों को छोड़कर रसोई की अग्नि में दस आहूतियाँ देना और कौआ, कुत्ता, कीट-पतङ्ग, लूले-लङ्गड़े, पापरोगी, चाण्डाल को भी अपने भोजन में से भाग देना।

५. अतिथियज्ञ—घर पर आनेवाले वेद-शास्त्रों के विद्वान्, धार्मिक उपदेशकों का भी आदर-सम्मान करना।

पाँच कोश हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय—इनका वियोग कर आत्मा को इनसे पृथक् समझना है।

पाँच ग्रन्थियों का एक और भी अभिप्राय है। प्रत्येक मनुष्य में काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहङ्कार-रूपी पाँच गाँठें हैं। यज्ञोपवीत की ये ग्रन्थियाँ यज्ञोपवीतधारी को यह स्मरण कराती हैं कि इन गाँठों को खोलना है।

यज्ञोपवीत में चार गाँठें नीचे होती हैं, एक ऊपर। मनुष्य को ज्ञान चाहिए। ज्ञान का स्रोत वेद हैं, अतः ज्ञान प्राप्ति के लिए वेद का अध्ययन करें। वेद में ज्ञान कहाँ से आया? वेदों में ज्ञान आया ब्रह्म से। इसीलिए ऊपर की गाँठ को ब्रह्मग्रन्थि कहते हैं। ज्ञान-प्राप्ति के लिए परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ें।

यज्ञोपवीत ९६ चप्पे का ही क्यों?

यज्ञोपवीत हाथ की चार अंगुलियों पर ९६ बार

लपेटा जाता है। इस प्रकार यज्ञोपवीत का परिमाण ९६ चप्पे होता है। यह ९६ अंगुल ही क्यों होता है, इसके निम्न कारण हैं—

प्रत्येक व्यक्ति अपनी अंगुलियों से ९६ अंगुल का होता है। यदि सन्देह हो तो मापकर देख लें। ९६ अंगुल का यज्ञोपवीत हमें यह स्मरण कराता है कि यज्ञोपवीत कन्धे से कटिप्रदेश तक ही नहीं है, अपितु शरीर का अङ्ग–प्रत्यङ्ग और प्रत्येक रोम इससे बिंधा हुआ है।

छान्दोग्य परिशिष्ट में इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहा गया है—

तिथिवारं च नक्षत्रं तत्त्ववेदगुणान्वितम्।
कालत्रयं च मासाश्च ब्रह्मसूत्रं हि षण्णवम्॥

अर्थात् १५ तिथि, ७ वार, २७ नक्षत्र, २५ तत्त्व, ४ वेद, ३ गुण, ३ काल और १२ मास—इनकी कुल संख्या ९६ होती है। यज्ञोपवीत में ये सब निहित हैं, अत: यज्ञोपवीत ९६ अंगुल का होता है।

मानवमान ८४ अंगुल का और देवमान ९६ अंगुल का होता है। यज्ञोपवीत धारण कर वेद–व्रत और

ब्रह्म–व्रत का अनुष्ठान कर मनुष्य को देवत्व और अन्त में ब्रह्मत्व प्राप्त हो, इसीलिए यज्ञोपवीत देवमान अर्थात् ९६ अंगुल का बनाया जाता है।

यज्ञोपवीत कटि तक ही क्यों ?

यज्ञोपवीत वाम स्कन्ध से धारित किया जाकर हृदय और वक्षस्थल पर होता हुआ कटि–प्रदेश तक पहुँचता है। इसमें भी एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक रहस्य छुपा हुआ है। प्रत्येक मनुष्य के ऊपर तीन प्रकार के बोझ हैं। मनुष्य में भार उठाने की शक्ति कन्धे में है, इसलिए यज्ञोपवीत कन्धे पर डाला जाता है। संसार में बोझ को वही वहन कर सकेगा जो कटिबद्ध है, जिसकी कमर कसी हुई है, इसलिए यज्ञोपवीत कटि–प्रदेश तक लटकता है।

प्रत्येक यज्ञोपवीतधारी अपने राष्ट्र की उन्नति के लिए, सभ्यता और संस्कृति के प्रचार और प्रसार के लिए तथा मातृभाषा की रक्षा के लिए कटिबद्ध रहे, इसलिए यह यज्ञोपवीत कटि–प्रदेश तक लटकता है।

यज्ञोपवीत बाएँ कन्धे से क्यों ?

तीन ऋणों एवं यज्ञों को हृदय से स्वीकार किया

जाता है। हृदय वामभाग में ही होता है, इसलिए यज्ञोपवीत वामस्कन्ध से हृदय पर होता हुआ दाहिनी ओर धारण किया जाता है।

संसार में सफलता वही प्राप्त करेगा, जो लक्ष्य को अपने सम्मुख रखेगा और लक्ष्य उसी व्यक्ति के समक्ष रह सकता है जो किसी कार्य को हृदय से करे, इसीलिए यज्ञोपवीत हृदय पर होता है।

यज्ञोपवीत के कन्धे, हृदय और कटि-प्रदेश पर ही ठहराने का एक और भी रहस्य है और वह यह है कि कन्धे के ऊपर ज्ञानेन्द्रियाँ आरम्भ हो जाती हैं; जिह्वा इसका अपवाद है। मनुष्य देव बन जाता है, वह संन्यास ले-लेता है, और यज्ञोपवीत उतार दिया जाता है।

यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में दो बातें और स्मरणीय हैं। एक यह कि प्रत्येक व्यक्ति को एक समय में एक ही यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए, दो नहीं। दूसरी यह कि यज्ञोपवीत श्वेत होना चाहिए, क्योंकि मन्त्र में उसे "**शुभ्रम्**" कहा गया है।

मेखला

उपनयन संस्कार में मौंजी भी धारण करनी पड़ती

है। वेद में मेखला के गुण इस प्रकार वर्णन किये गये हैं—

श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधि जाता
स्वस ऋषीणां भूतकृतां बभूव।
सा नो मेखले मतिमा धेहि
मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च॥
—अथर्व० ६।१३३।४

यह मेखला श्रद्धा की पुत्री, तप से उत्पन्न होनेवाली, यथार्थकारी ऋषियों की बहिन है। यह मेखला हमें बुद्धि, मेधा, कष्टों को सहन करने का सामर्थ्य और इन्द्रियों की विशुद्धता प्रदान कराती है।

मेखला-धारण जहाँ वीर्य-रक्षण में सहायक है तथा अण्डकोष-वृद्धि आदि रोगों को रोकती है, वहाँ शतपथब्राह्मण के शब्दों में यह आत्मतेज भी प्रदान करता है, इसीलिए उपनयन के समय इसके धारण करने का विधान है।

अन्य मतों में यज्ञोपवीत

सिक्खों के प्रथम गुरु श्री नानकदेवजी की एक वाणी इस विषय में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है—

दया कपाह सन्तोष सूत, जत गंठी सत वट्ट।
एह जनेऊ जीऊ का हयिता पाण्डे धत्त॥
ना यह तुट्टे ना मल लागे न यह जले न जाय।
धन्न सो मानुस नानका जो गल चल्लै पाय॥

श्री नानकदेवजी यज्ञोपवीत को अति श्रेष्ठ समझते थे, अत: उन्होंने मानसिक यज्ञोपवीत धारण करने पर विशेष बल दिया है, क्योंकि वह न कभी टूट सकता है और न कभी मैला हो सकता है।

जैनमत के 'आदिपुराण' में लिखा है कि "इस सवर्णीकाल के प्रथम चक्रवर्ती भरत महाराज ने दिग्विजय यात्रा करके सेना लेकर दिग्विजय की प्रथा चलाई। एक दिन राजद्वार में घास आदि बोकर उन्होंने सारी प्रजा को बुलाया। जो लोग घास पर से दरबार में आये उन्हें पूर्ण अहिंसक न समझा गया और जो लोग जीव-हिंसा के भय से घास पर से न आकर अन्य मार्ग से आये वे श्रेष्ठ ब्राह्मण पदवाच्य हुए और उन्हें उपवीत दिया गया।"

इस प्रकार जैनग्रन्थों में भी यज्ञोपवीत का स्पष्ट उल्लेख है।

महात्मा गौतम बुद्ध ने "उपनयन को धर्म–मार्ग पर ले–जानेवाला और उपवीत को शान्तपद की प्राप्ति करानेवाला" कहकर उल्लेख किया है।

—मंझिम निकाय १।५।९ तथा ३।२।६

पारसियों के यज्ञोपवीत धारण करने का मन्त्र इस प्रकार है—

फ्राते मज्दाओ वरत् पौरवनीम् एयाओं धनिमस्तेहर पाये संघेम, मैन्यतस्तेम् बन्धुहिम् दयेनीम् मज्दवास्नाम्॥

—जेन्द अ० प० ३, पृ० २३८

ऐ डोरा! तू तारों के समान तेजस्वी तथा श्रेष्ठ दैवीशक्तिवाला है, और आयु का देनेवाला है। पवित्र पारसी धर्म के चिह्न यज्ञोपवीत! तुझे सबसे पहले मज्दा ने धारण किया था, मैं भी तुझे पहनता हूँ।

इस प्रकार इतिहास के अवलोकन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक धर्म में यज्ञोपवीत अत्यन्त प्राचीनकाल से चला आ रहा है।

उपनयन का समय

इस संस्कार का वेदानुकूल समय ब्राह्मण के

लिए ८ वर्ष, क्षत्रिय के लिए ११ वर्ष, और वैश्य के लिए १२ वर्ष है। जैसाकि मनुजी महाराज ने लिखा है—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥

—मनु० २।३६

व्यासस्मृति तथा महाभारत आदि में भी ऐसा ही विधान है, परन्तु यदि उपर्युक्त समय पर यज्ञोपवीत न हो सके तो ब्राह्मण का १६, क्षत्रिय का २२ और वैश्य का २४ वर्ष से पूर्व यज्ञोपवीत हो जाना चाहिए। यदि इस समय तक भी यज्ञोपवीत संस्कार न हो तो ये पतित हो जाते हैं।

स्त्रियों को यज्ञोपवीत का अधिकार

कुछ धर्म के ठेकेदार इस अत्यन्त पवित्र और महत्त्वपूर्ण संस्कार से स्त्रियों को वञ्चित रखना चाहते हैं, परन्तु प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन से पता चलता है कि प्राचीनकाल में पुरुषों की भाँति स्त्रियों को भी यज्ञोपवीत पहनने का अधिकार था, जैसाकि पारस्कर-गृह्यसूत्र में लिखा है—

स्त्रिया उपनीता अनुपनीताश्च।

—पा०पृ० ८४, सिद्धिविनायकप्रेस, सं० १९३६

स्त्रियाँ दो प्रकार की होती हैं—यज्ञोपवीत पहननेवाली और यज्ञोपवीत न पहननेवाली।

इसी प्रकार यम-संहिता में लिखा है—

पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जिबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा॥

अर्थात् प्राचीन समय में कन्याओं का उपनयन संस्कार होता था तथा उन्हें गायत्री का जप और वेदाध्ययन करने की भी आज्ञा थी।

महर्षि दयानन्द ने अपने एक प्रवचन में कहा था—"स्त्रियों को भी विद्या-सम्पादन का अधिकार पहले था और उसके अनुकूल इनका व्रतबन्ध पूर्व में करते थे।" —उपदेश मञ्जरी, ७वाँ व्याख्यान

यज्ञोपवीत और गायत्री

यज्ञोपवीत और गायत्री का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतः [illegible]ँ गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में दो-चार शब्द लि[illegible] अप्रासङ्गिक न होगा।

गा[illegible]मन्त्र यह है—

स्त्रिया उपनीता अनुपनीताश्च।

—पा०पृ० ८४, सिद्धिविनायकप्रेस, सं० १९३६

स्त्रियाँ दो प्रकार की होती हैं—यज्ञोपवीत पहननेवाली और यज्ञोपवीत न पहननेवाली।

इसी प्रकार यम-संहिता में लिखा है—

पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जिबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा॥

अर्थात् प्राचीन समय में कन्याओं का उपनयन संस्कार होता था तथा उन्हें गायत्री का जप और वेदाध्ययन करने की भी आज्ञा थी।

महर्षि दयानन्द ने अपने एक प्रवचन में कहा था—"स्त्रियों को भी विद्या-सम्पादन का अधिकार पहले था और उसके अनुकूल इनका व्रतबन्ध पूर्व में करते थे।" —उपदेश मञ्जरी, ७वाँ व्याख्यान

यज्ञोपवीत और गायत्री

यज्ञोपवीत और गायत्री का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतः यहाँ गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में दो-चार शब्द लिखना अप्रासङ्गिक न होगा।

गायत्री मन्त्र यह है—

ओ३म्।
भूर्भुवः स्वः।
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ —यजुः० ३६।३

इस मन्त्र का सरलार्थ इस प्रकार है—

हे सर्वरक्षक! सच्चिदानन्दस्वरूप, सकलजगत् उत्पादक, सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक! आपके सर्वश्रेष्ठ पाप-नाशक तेज को हम धारण करते हैं। हे परमात्मन्! आप हमारी बुद्धि और कर्मों को श्रेष्ठ मार्ग में प्रेरित करें।

मनु महाराज गायत्री के विषय में लिखते हैं—

सावित्र्यास्तु परं नास्ति। —मनु० २।८३

गायत्री से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है।

वास्तव में वेद-शास्त्र, पुराण और स्मृतियाँ गायत्री की महिमा से भरे पड़े हैं। इसकी महिमा महान् है। जो इसका जप और अनुष्ठान करता है, वही इसके प्रभाव को जानता है।

यज्ञोपवीत-सम्बन्धी कुछ प्रश्नोत्तर

प्रश्न—क्या मलमूत्र त्यागने से पूर्व यज्ञोपवीत

को कान पर चढ़ाना आवश्यक है ?

उत्तर—नहीं, यह आवश्यक नहीं है। कुछ लोग यज्ञोपवीत को कान पर चढ़ाने में यह हेतु देते हैं कि कर्णेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय का आपस में सम्बन्ध है और यज्ञोपवीत को कान पर चढ़ाने से किसी नाड़ी-विशेष पर दबाव आदि पड़ने से वीर्यदोषादि रोग नहीं होते, परन्तु आयुर्वेद और पाश्चात्य शरीर-विज्ञान-सम्बन्धी ग्रन्थों में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि कर्णेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय का आपस में कोई सम्बन्ध है। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि मलमूत्र विसर्जन करते समय यज्ञोपवीत नाभि से ऊपर रहना चाहिए, जिससे मूत्रादि के छींटे न लगें।

प्रश्न—यज्ञोपवीत अपवित्र कैसे होता है ?

उत्तर—यदि यज्ञोपवीत-संस्कार होने के पश्चात् तीन दिन तक सन्ध्या न करे तो द्विज शूद्रवत् हो जाता है। वह प्रायश्चित्त करने पर शुद्ध होता है और पुनः संस्कार कराना लिखा है। जन्म-शौच, मरण-शौच, रजस्वला-स्पर्श, और टूट जाने पर यज्ञोपवीत अपवित्र हो जाता है; तब उस यज्ञोपवीत को उतारकर नूतन यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए।